सामाजिक अध्ययन की पुस्तकें एवं नक्शे

प्रकाश कान्त

एकलव्य फाउंडेशन ने सन् 1983 में एक नए शिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत की। इस बार जिस विषय पर काम शुरू किया गया था वो पहले से ही बदनाम था – हिस्ट्री-जियोग्रफी बड़ी बेवफा, रात को बाँचा, सुबह को सफा। जी, यह सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम था जिसमें यह विषय करके देखने वाली गतिविधियों और विश्लेषणात्मक सामग्री के अभाव में और बोझिल पाठ्यपुस्तकों की वजह से रटने या याद करने का पर्याय बन गया था।

इस कार्यक्रम में नए सिरे से पाठ्यपुस्तक लेखन के साथ-साथ शिक्षक प्रशिक्षण, शालाओं में जाकर शिक्षकों की मदद करना और ओपनबुक एग्ज़ाम की शुरुआत भी की गई। नई पाठ्यपुस्तकों की मुख्य बात थी - जिस टॉपिक या अवधारणा की बात की जा रही है, उसकी एक सरल, साफ और जीवन्त छवि विद्यार्थी के मन में बने। इसी छवि या जीवन्त चित्र के आधार पर विद्यार्थी अवधारणाओं को आत्मसात कर सकते हैं, व्यक्त कर सकते हैं और उन पर सोच-विचार कर सकते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पाठ्यपुस्तकों को बोलचाल की भाषा के आसपास रखा गया और टॉपिक की रोचक एवं विस्तृत प्रस्तुति की गई। कहानियों का उपयोग, सार्थक चित्रों-मानचित्रों का भरपूर उपयोग, बीच-बीच में सवाल, अभ्यास एवं गतिविधियों आदि का उपयोग भी किया गया। इसके अलावा शिक्षकों को इन किताबों को पढ़ाने और बच्चों को ज्ञान निर्माण के मौके देने के लिए प्रशिक्षित किया गया।

यह कार्यक्रम मध्यप्रदेश के होशंगाबाद, हरदा और देवास ज़िले के आठ शासकीय माध्यमिक विद्यालयों में शुरू हुआ था। जैसे-जैसे शालाओं के साथ सम्पर्क बढ़ता गया, वैसे-वैसे कार्यक्रम में शैक्षणिक शोध जैसे पहलुओं का विकास भी होता गया। विद्यार्थी सौर मण्डल के बारे में, पृथ्वी की गतियों, रात-दिन के बनने, अक्षांश-देशान्तर को पढ़ने में किस तरह की दिक्कतों का सामना करते हैं, इन्हें करीब से जाना गया। सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम इन 8 शालाओं में सन् 2002 तक लागू रहा।

प्रकाश कान्तजी स्वयं इस कार्यक्रम को नेतृत्व देने वाले शिक्षकों में शामिल थे। वे इस नवाचार को अपनी कक्षा में बच्चों तक लेकर गए। इन्हीं अनुभवों का निचोड़ है उनकी किताब – *सामाजिक अध्ययन नवाचार*, बच्चों के साथ-साथ मैंने भी सीखा।

आगामी अंकों में भी हम प्रकाश कान्तजी की इस किताब के कुछ हिस्सों से रूबरू होते रहेंगे।

अभी तक सामाजिक अध्ययन की चाहे जैसी भी किताब रही हो, उसमें नक्शों को बराबर शामिल किया जाता रहा है - विशेषकर, भूगोल एवं इतिहास के खण्डों में। नागरिकशास्त्र के कुछ पाठों में भी नक्शों का उपयोग किया जाता था।

बहुत पहले जब प्रदेश की तीसरी कक्षा में ज़िले का भूगोल पढ़ाया जाता था तब पुस्तक में ज़िले से सम्बन्धित अलग-अलग पाठों में ज़िले के नक्शे दिए जाते थे। इनमें ज़िले की प्रदेश में स्थिति, ज़िले की नदियाँ, पहाड़, मैदान, जंगल, सड़क, रेल लाइन, तहसील, शहर, फसलें, ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण पर्यटन व सांस्कृतिक स्थल इत्यादि चीज़ें दर्शाई जाती थीं। स्कूलों में आम तौर पर ज़िले के नक्शे उपलब्ध हुआ करते थे जिनका अध्यापन में उपयोग किया जा सकता था। इसी क्रम में चौथी में प्रदेश और पाँचवीं कक्षा में देश का भूगोल पढ़ाया जाता था। इस तरह नक्शों का प्रारम्भिक परिचय बच्चों को प्राथमिक कक्षाओं से ही देने का प्रयास रहता था। इन नक्शों का उपयोग मोटे तौर पर प्राकृतिक, राजनैतिक, आर्थिक जानकारी देने में किया जाता था। इसके अलावा महाद्वीप, महासागरों का सामान्य परिचय करवाने के लिए संसार का नक्शा दिया जाता था।

पुस्तक में ये नक्शे दिए तो जाते थे लेकिन पढ़ने-पढ़ाने में सामान्यतः इनका कोई उपयोग नहीं होता था। कम-से-कम प्राथमिक कक्षाओं में तो नहीं ही! छात्र सामान्य रूप से इतना ही पहचान लें कि कौन-सा नक्शा देश का है और कौन-सा प्रदेश का, तो शायद यह भी गनीमत ही होती थी। वैसे उनके लिए प्रदेश में भी देश और प्रदेश के बाहर भी देश के होने की अवधारणा काफी कठिन होती है। बहरहाल, बच्चे इन नक्शों के बारे में इससे ज़्यादा कुछ नहीं जानते। उन्हें इसकी ज़रूरत भी नहीं होती। उनका काम प्रश्नोत्तर याद भर कर लेने से चल जाता है। कभी नक्शे देखने की ज़रूरत पड़ती नहीं। वे कभी नक्शों को ध्यान से नहीं देखते। बल्कि कहा जाना चाहिए कि बिलकुल ही नहीं देखते। और यह कहना मेरे खयाल से गलत नहीं होगा कि अधिकांश शिक्षक भी इन्हें नहीं देखते। न देखते हैं और न ही पढ़ाने में उनकी मदद लेना

ज़रूरी समझते हैं! बच्चों की ही तरह वे भी इस बात से आश्वस्त होते हैं कि सामाजिक अध्ययन पढ़ना-पढ़ाना नक्शों के बिना सम्भव है।

लगभग यही हालत माध्यमिक कक्षाओं की भी होती है। वहाँ भी नक्शे हर कक्षा के इतिहास व भूगोल के पाठों में पाए जाते हैं। भूगोल में महाद्वीपों के प्राकृतिक एवं राजनैतिक नक्शे। इतिहास में राजाओं, नवाबों या बादशाहों के राज्य के विस्तार के नक्शे। लेकिन उन्हें न तो बच्चे देखते हैं और न ही शिक्षक! ये नक्शे आम तौर पर श्वेत-श्याम होते हैं। जहाँ कहीं रंगीन होते भी हैं वहाँ उनकी छपाई बेहद खराब होती है। रंग और संकेत तालिका का कोई सामंजस्य ही नहीं होता। रंगों के ज़रिए नक्शे को पढ़ पाना ज़्यादातर कठिन ही होता है। और फिर नक्शा अगर प्राकृतिक है तो नदी, पहाड़, पठार, मैदान, रेगिस्तान, झील वगैरह सभी कुछ एक ही नक्शे में दिए होते हैं। ज़ाहिर है, पुस्तकाकार नक्शे में इतनी सारी चीज़ों को पढ़ और समझ पाना मुश्किल होता है। यही बात दीवार पर टाँगे जाने वाले नक्शों के साथ भी होती है।

शायद यह बात थोड़ी कम भरोसे की लगे लेकिन यह हकीकत है कि आम तौर पर स्कूलों में ये नक्शे उपलब्ध होते ही नहीं, और जहाँ कहीं होते भी हैं वहाँ रोल करके सुरक्षित रख दिए जाते हैं। कुछ साल पहले डाइट की एक व्याख्याता के साथ मेरा देवास ज़िले के एक नगरीय हायर सेकेंडरी स्कूल जाना हुआ। उन्हें वैश्विक स्तर पर जनसंख्या के स्थानान्तरण के अपने प्रोजेक्ट के सिलसिले में शिक्षक और बच्चों से चर्चा करनी थी। चर्चा के बीच जब विश्व का नक्शा माँगा गया तो बताया गया कि स्कूल में नक्शे नहीं हैं। यह सुनकर हम लोग हैरान थे। वह उस शहर का काफी बड़ा स्कूल था। छात्र संख्या हज़ार से ऊपर थी। शिक्षक भी पर्याप्त थे। बाकी भौतिक सामग्री भी खूब सारी थी। लेकिन उस हायर सेकेंडरी स्कूल में नक्शे नहीं थे।

जिन थोड़े-बहुत स्कूलों में अगर क्लास में नक्शे टँगे होते भी हैं तो वहाँ वे सिर्फ कक्षा की सजावट का काम कर रहे होते हैं, सुन्दरता बढ़ा रहे होते हैं। पढ़ने-पढ़ाने में उनका कोई उपयोग नहीं किया जाता। शिक्षक पढ़ाते समय उनका इस्तेमाल करना ज़रूरी नहीं समझते। भूगोल पढ़ाने वाले शिक्षक भी! जब भूगोल में यह स्थिति है तो इतिहास के पाठों की बात करना ही बेकार है।

स्कूलीय शिक्षा में नक्शे

आम तौर पर माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में नक्शों को लेकर कोई अभ्यास या गतिविधि नहीं होती। पाठ्य-सामग्री, नक्शे और अध्यापन – ये तीनों चीज़ें एक-दूसरे से बिलकुल अलग होते हैं। जहाँ अध्यापन

का अर्थ मात्र परीक्षानुकूल प्रश्नोत्तर लिखवाकर उन्हें रटवाना-भर होता हो, वहाँ तो पाठ्य-सामग्री भी किसी हद तक फालतू हो जाती है। ज़ाहिर है, नक्शे तो और भी ज़्यादा फालतू हो जाते हैं। पढ़ने-पढ़ाने में उनका कोई उपयोग नहीं किया जाता। पाठ के अन्त में दी जाने वाली प्रश्नावली में भी आम तौर पर नक्शे सम्बन्धी प्रश्न नहीं होते। ऐसे में यह कहना कतई गलत नहीं होगा कि माध्यमिक स्तर की सामाजिक अध्ययन की पाठ्यपुस्तकें सिर्फ नक्शों का बोझ ढोती हैं। चूँकि नक्शों की छपाई बेहद खराब होती है इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे उनमें शोभा बढ़ाने का काम करते हैं!

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ज़रूर परीक्षाओं में नक्शों को अहमियत दी जाती है। परीक्षाओं में आम तौर पर नक्शे से सम्बन्धित एक प्रश्न पूछा जाता है जिसे करना सामान्यतः अनिवार्य होता है। हालाँकि, पिछले तमाम सालों में इस प्रश्न का स्वरूप काफी रूढ़ और इकहरा हो चुका है। उनमें किसी तरह का नवाचार और कल्पनाशीलता दिखाई नहीं देती। इनका कक्षा में पाठ पढ़ाए जाने के दौरान नियमित रूप से अभ्यास भी नहीं करवाया जाता। परीक्षा के ऐन पहले मोटा-मोटा-सा कुछ बता दिया जाता है। नदी, पहाड़, शहर, झील, समुद्र और कुछेक खनिज-फसलों के क्षेत्र। लेकिन यह एक तकलीफदेह हकीकत ही है कि अक्सर इतनी मोटी-मोटी चीज़ें भी बच्चे नक्शे में ठीक-से नहीं बता पाते। सामान्यतः नक्शे का प्रश्न इसीलिए हल किया जाता है क्योंकि ये अनिवार्य होता है। अगर यह प्रश्न ऐच्छिक हो तो सम्भवतः बहुत कम बच्चे ही इसे हल करना चाहें। ऐसे में सवाल उठ सकता है कि आखिर सामाजिक अध्ययन की निर्धारित पुस्तकों में नक्शों की अहमियत क्या है? वे वहाँ दिए ही क्यों जाते हैं!

जहाँ तक इतिहास में दिए जाने वाले नक्शों की बात है, वे ज़्यादातर राजाओं-बादशाहों के राज्य के विस्तार, पुराने शहरों की स्थिति इत्यादि बताने के लिए दिए जाते हैं। कुछ में पुराने और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों को दर्शाया जाता है। इन नक्शों को अगर ठीक-से सन्दर्भ और सहायक सामग्री की तरह इस्तेमाल किया जाए तो इतिहास की घटनाओं की भौगोलिकता को समझने में आसानी हो सकती है। लेकिन इतिहास के नक्शे वाले पृष्ठ तो भूगोल से भी ज़्यादा बिना देखे-पढ़े रह जाते हैं। सम्बन्धित पाठ्य-सामग्री पर चर्चा करते वक्त उन्हें कभी देखा, दिखाया और बताया नहीं जाता। अगर पानीपत के मैदान में तीन-तीन युद्ध हुए थे तो वह मैदान भारत के नक्शे में आखिर कहाँ था, यह कभी बताया नहीं जाता। या अगर वास्को डी गामा पुर्तगाल से भारत आया था

चित्र-1: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड का 'कक्षा-6 में तुमने जाना था' का एक पन्ना। इस मानचित्र में राजा अशोक के समय में मगध राज्य की सीमा दिखाई गई है। जनपदों के अलावा और भी कई इलाके मगध राज्य में आ गए थे।*

तो किस रास्ते से आया था! या फिर मोहम्मद तुगलक ने दिल्ली की जगह जिस दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाने का असफल प्रयास किया था, वह दक्षिण भारत में किस जगह स्थित है। यह सब कभी नहीं दिखाया जाता!

नागरिकशास्त्र और कृषि के पाठों की तो और भी बुरी हालत होती है। हालाँकि, उनमें नक्शे अमूमन कम होते हैं। फिर भी निर्वाचन क्षेत्र या फसलों के उत्पादन क्षेत्र, जनसंख्या के वितरण इत्यादि को दर्शाने वाले नक्शे दिए जाते हैं! लेकिन इन नक्शों का भी कभी उपयोग नहीं होता। वे पुस्तक के पन्नों की संख्या और इस तरह सिर्फ बोझ बढ़ाने का काम करते हैं, इस तथ्य के बावजूद कि नक्शे सामाजिक अध्ययन पढ़ने-पढ़ाने का सबसे ज़रूरी और प्रभावशाली माध्यम होते हैं। प्रशिक्षण संस्थाओं में ज़रूर बताया जाता है कि शिक्षक पढ़ाते वक्त नक्शों का उपयोग करें लेकिन प्रशिक्षणों में बताई जाने वाली अन्य बहुत सारी बातों की तरह इस नसीहत पर भी आम तौर पर अमल नहीं किया जाता। बच्चा बिना नक्शा देखे ही अपनी माध्यमिक स्तर की पढ़ाई पूरी कर लेता है। वह कभी समझ नहीं पाता कि चीज़ों को जिस तरह से उसे देखना-समझना था, उस तरह से सब नहीं कर पाने से उसका क्या और कैसा नुकसान हुआ! यह सिर्फ सरकारी स्कूल के बच्चों के साथ हो, ऐसा नहीं है। निजी स्कूलों के बच्चों के साथ भी यही होता है। क्योंकि यूँ भी उनका सारा ज़ोर सिर्फ कथित तौर पर अच्छे-से-अच्छे रिज़ल्ट निकालने पर हुआ करता है।

बच्चे और दिशाएँ

नक्शा देखते-दिखाते और नक्शे के ज़रिए पाठ समझाते समय एक खास दिक्कत आती है, बच्चों को सही दिशाबोध करवाने की, भले ही

दिशाएँ नक्शे में दी हुई हों। ऊपर उत्तर, नीचे दक्षिण! दाएँ हाथ की तरफ पूर्व और बाएँ पश्चिम। प्राथमिक रूप से मददगार होते हुए भी यह एक तरह से बहुत स्थूल किस्म का दिशा दर्शन होता है। ऊपर-नीचे का तो ठीक लेकिन दाएँ-बाएँ या दाहिने-बाएँ में गफलत होती रहती है। खासकर शुरुआती कक्षाओं में। तब 'जीमना-डाँवा' जैसे स्थानीय शब्दों की मदद लेनी पड़ती है। 'जीमना' यानी जिस हाथ से जीमते या खाना खाते हैं और डाँवा यानी जिससे नहीं जीमते! या फिर सीधा-उल्टा। लेकिन किताबों में आम तौर पर ये शब्द नहीं होते। वहाँ मानक या पारिभाषिक शब्द दिए होते हैं। उस स्थिति में शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह ठीक-से समझ बनाने के लिए स्थानीय भाषा का सहारा ले! ऐसे में उन शिक्षकों को सुविधा होती है जो उसी अंचल-विशेष के हों या कम-से-कम वहाँ की स्थानीय भाषा से परिचित हों क्योंकि प्रत्येक स्थानीय भाषा की भी कुछ विशेषताएँ होती हैं जिनसे परिचित होने से संवाद एवं सम्प्रेषण बेहतर हो पाता है। मसलन, मानक हिन्दी में 'मोटे' का सामान्य तौर पर अर्थ होता है स्थूल! जबकि मालवी में उसका अर्थ होता है, बड़ा। गुजराती में भी बड़ा ही होता है। मोटा भाई, मतलब बड़ा भाई!

बहरहाल, अपने गाँव के मिडिल स्कूल की छठीं कक्षा में भूगोल पढ़ाते समय मेरे सामने यही दिक्कत आई। जैसा कि पहले ज़िक्र किया था, मानकुण्ड स्कूल में मानकुण्ड के अलावा आसपास के घट्या गया-सुर, पोनासा, मानकुण्डी, अन-खेली, मुरादपुर जैसे कई गाँवों के बच्चे भी पढ़ने आते थे। इसकी वजह यह थी कि उनके गाँवों में

इस लेख के साथ एक और कागज़ पर एक नक्शा बना था। नक्शे में हासिलपुर का नाम था। दूसरे गाँव बने ज़रूर थे, मगर उनके नाम नहीं थे।

तुम तीर बनाकर बताओ, दौलत किस रास्ते से गया होगा?

चित्र-2: *कक्षा छठीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'दिशाएँ' का एक पन्ना।*

उन दिनों मिडिल स्कूल की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। इसके अलावा उन गाँवों के प्राथमिक स्कूलों में से कुछ स्कूल एक-शिक्षकीय भी थे। ज़ाहिर है, उन अलग-अलग स्कूलों से पढ़कर आने वाले बच्चों का शैक्षणिक स्तर एक-जैसा नहीं था। गणित, विज्ञान, भाषा की तरह भूगोल वगैरह का भी। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किसी स्कूल की किसी भी कक्षा के सभी छात्रों का शैक्षणिक स्तर कभी एक-जैसा नहीं हो सकता। हालाँकि, कक्षावार स्तरीकरण में ऐसा मान लिया जाता है।

खैर, मोटे तौर पर प्राथमिक स्तर पर बच्चों की जानकारी महाद्वीप, महासागर, नदी, पहाड़, पठार, मौसम, ग्रहण, सौर-मण्डल इत्यादि तक सीमित हुआ करती है। इसके अलावा, देश-प्रदेश की कुछ मोटी-मोटी जानकारियाँ भी होती हैं। वैसे अलग-अलग स्कूलों से आने वाले छात्रों के पास इस तरह की जानकारियाँ भी एक-जैसे स्तर की नहीं होतीं। मेरे स्कूल में आए छात्रों के साथ भी यही बात थी।

सो, भूगोल पढ़ाते वक्त यह दिक्कत रही। वैसे इस पर ध्यान थोड़ा बाद में जा पाया। आम तौर पर यही होता है। कई बार शिक्षक सहज भाव से जिन चीज़ों को आसान समझता है, वे बच्चों के लिए काफी मुश्किल हुआ करती हैं। बच्चों की व्यावहारिक समस्याओं पर शिक्षक का ध्यान देर से ही जा पाता है। कई बार तो काफी देर हो जाने के बाद! मेरे मामले में भी देर तो हुई लेकिन गनीमत रही कि बहुत ज़्यादा नहीं। मैंने देखा कि बच्चे मोटे तौर पर तो दिशाएँ पढ़ और पहचान लेते हैं लेकिन नक्शों के बहुत भीतर जाने पर गड़बड़ करते हैं। और गड़बड़ तो वे दूसरी चीज़ों को लेकर भी करते हैं।

असहज करने वाले सवाल

वे पिछली कक्षाओं में बार-बार सुने-पढ़ाए मुताबिक इतना तो जानते हैं कि पृथ्वी गोल है। दूसरे ग्रह-नक्षत्रों की तरह! बाकी ग्रह-नक्षत्रों के गोल होने या गोल बताए जाने से उन्हें समस्या नहीं होती क्योंकि वे देख पाते हैं कि चाँद-सूरज गोल बताए भी जाते हैं और गोल दिखाई भी देते हैं। लेकिन पृथ्वी को भी गोल बताए जाने पर उन्हें थोड़ी-सी दिक्कत होती है। अगर गोल है तो वैसी दिखाई क्यों नहीं देती! दिखाई तो वह समतल ही देती है। फिर?

यह 'फिर' पड़ोस के गाँव से रोज़ तीन किलोमीटर पैदल चलकर आने-जाने वाले देवकरण का था जिसके पिता खेत मज़दूर थे। उसका सवाल वाजिब था। जब कोई चीज़ सपाट-समतल दिखाई देती है तो फिर वह गोल कैसे हुई? मेरे लिए उसके सवाल से खुद का तालमेल बिठाना थोड़ा मुश्किल रहा। वाजिब होने के

बावजूद पूछी गई बात के अभिप्राय को एकदम से समझने में थोड़ी-सी उलझन हुई। दरअसल, शिक्षक या ज़्यादातर बड़ों के साथ यह समस्या हुआ करती है कि तयशुदा अवधारणा या अपने भीतर स्थाई हो चुके कथित ज्ञान पर अचानक सवालिया निशान लगाया जाना, उन्हें भीतर से थोड़ा-सा असहज कर देता है। हमें लगता है कि जैसा हम मानते, सोचते और बच्चों से कहते हैं, सब कुछ वैसा ही है। प्रश्नातीत। उस पर सवाल-जवाब कैसा!

बहरहाल, देवकरण के सवाल से पैदा हुई असहजता से बाहर आने में मुझे थोड़ी देर लगी थी। जवाब में, मैंने पृथ्वी के गोल होने के तथ्य को समझाने के लिए वे सब सर्वप्रचलित उदाहरण और तर्क दिए थे, जिन्हें अपनी पढ़ाई के दिनों से सुनता-पढ़ता आ रहा था। अपनी बात खत्म करने के बाद मैंने उसका चेहरा देखा था जिस पर अब सवाल तो नहीं था या सवाल की स्याही तो उड़ गई थी पर लकीरों जैसा कुछ बाकी था और पूरी तरह न समझ पाने के संकेत भी। मैं एक तरह से असहाय था। मुझे लगता है, एक शिक्षक को अपने काम के बीच अक्सर ऐसी असहायताओं का सामना करना पड़ता है। कई बार उसे लगता है कि सारी कोशिशों के बाद भी बात बच्चे तक सही तरह से पहुँच नहीं पा रही है। कभी-कभी बच्चे की जिज्ञासा और शिक्षक के कथित ज्ञान के बीच एक ऐसी अनदेखी खाई होती है जो अमूमन न तो पाटी जा पाती है और न लाँघी! और ऐसे में छात्र एवं शिक्षक खाई के इस-उस तरफ छूटे रह जाते हैं।

टँगा नक्शा और पानी बहाव

बहरहाल, जैसा अभी ज़िक्र किया, बिलकुल शुरू में तो नहीं लेकिन कुछ दिन बाद ध्यान गया कि सिर्फ दिशा ही नहीं, नक्शे को लेकर भी बच्चों की अपनी कुछ मुश्किलें हैं। चाहे नक्शा दीवार पर टँगा हो या किताब में छपे होने से गोद में रखा हो या फिर हाथ में लिया हुआ हो, उन्हें यही लगता है कि वे उसे सामने से देख रहे हैं। ऐसे में वे उत्तर-दक्षिण दिशा को हमेशा ऊपर-नीचे की तरह समझते रहते हैं। ऊपर उत्तर, नीचे दक्षिण! इस सूरत में समस्या तब होती है जब कोई नदी दक्षिण से उत्तर, मसलन, चम्बल या सोन, बहती बताई जाती है। अपने सामान्य ज्ञान के चलते उनके लिए यह समझ पाना मुश्किल होता है कि कोई नदी भला नीचे से ऊपर कैसे बह सकती है! क्योंकि पानी तो ऊपर से नीचे यानी ढाल की तरफ बहता है। यह समझते-कहते हुए वे अपने देखे-जाने स्वानुभूत और एक तरह से सिद्ध ज्ञान को ही बतौर तर्क इस्तेमाल करते हैं। उनके लिए नक्शे का 'ऊपर-नीचे' और धरती का 'ऊपर-नीचे' एक ही होता है। कभी-कभी सरलीकृत सूचना या

जानकारी किस तरह की मुश्किल पैदा कर देती है, यह उसी की एक मिसाल हो सकती है। बेशक, इस तथ्य को समझ पाना उनके लिए तब भी आसान नहीं होता कि नक्शे हमेशा इस तरह से बनाए जाते हैं मानो पृथ्वी या पृथ्वी के किसी खास हिस्से को ऊपर से देखा जा रहा हो! जब देखे जाने का कोण बदल जाता है तब ऊपर-नीचे की अवधारणा भी गड़बड़ा जाती है। अब तक जिसे उत्तर-दक्षिण देखा-कहा जा रहा होता है, वह वैसा नहीं रह जाता। तब लगा था कि बच्चों को नक्शा सबसे पहले दीवार पर टाँगकर नहीं बल्कि ज़मीन पर फैलाकर बताया जाना चाहिए। उन्हें खड़ा करके, ऊपर से! कुछ दिन इस तरह के अभ्यास के बाद उनकी यह समझ बन सकती है कि दीवार पर टँगे नक्शे में दिखाई गई जगह असल में ऊपर से देखी जा रही है, सामने से नहीं!

इस पूरी मशक्कत में मेरी समझ यह बनी कि जिस नक्शे को देखने-पढ़ने में हम शिक्षक या बड़े व्यक्ति सामान्यतः कोई कठिनाई नहीं अनुभव करते, बच्चों के लिए असल में वह कितनी मुश्किल चीज़ होती है! हम परीक्षाओं में कितनी आसानी-से उनसे किसी खाके में कोई नदी, मैदान, पहाड़ या पठार अंकित करने को कह देते हैं। एक ही समतल कागज़ पर प्रकृति की इतनी उलझी हुई संरचनाएँ। पहाड़ भी, मैदान भी! नदी और झील भी! उसी पर दिशाएँ भी! ऊपर-नीचे मतलब उत्तर-दक्षिण का झमेला भी! ऐसे में बच्चे अगर भ्रमित हो जाते हैं, समझ की भूल-भुलैया में भटक जाते हैं तो यह स्वाभाविक ही है। लेकिन सामाजिक अध्ययन जैसा विषय नक्शों के बिना पढ़ाया भी नहीं जा सकता।

मूर्त संसाधनों का इस्तेमाल

यूँ तो समतल कागज़ पर बनी टेबल, कुर्सी, अलमारी वगैरह जैसी तमाम त्रिआयामी चीज़ें बच्चे आसानी-से देख-समझ लेते हैं। उनके दूर या पास होने का एहसास भी उन्हें हो जाता है। लेकिन नक्शों में दिखाई चीज़ों के साथ इतनी आसानी नहीं रहती। प्लास्टिक के त्रिआयामी नक्शे ही इसमें थोड़ी-बहुत मदद कर पाते हैं। खासकर धरातल की संरचना समझने में। लेकिन इन नक्शों के साथ एक आम समस्या यह है कि बेहद महँगे होने से वे सारे बच्चों को मुहैया नहीं करवाए जा सकते। दूसरे, छोटे स्कूलों के लिए उन्हें अपेक्षित संख्या में खरीद पाना आसान नहीं होता। खासकर उनके फुल साइज़ होने की वजह से। और फिर उनको दीवार पर टाँगने से धरातल की संरचनाओं का आकार-प्रकार अलग तरह का दिखाई देता है। बच्चे इससे फिर भ्रमित होते हैं। असल में, इन नक्शों को तो नीचे रखकर ही देखना ज़रूरी होता है।

मैं इतना समझ चुका था कि छठीं क्लास में बच्चे नक्शे के बारे में अगर एक बार सब कुछ ठीक-से जान-समझ गए तो उनके लिए अगली कक्षाओं में सामाजिक अध्ययन पढ़ने में नक्शों का इस्तेमाल करना आसान और उपयोगी हो जाएगा। यह सोचकर मैंने स्कूल के लिए भारत के छोटे आकार के त्रिआयामी नक्शे का इन्तज़ाम किया। दूर से देखने-दिखाने से तो उस नक्शे में कुछ समझ में आ नहीं सकता था, सो उसे बच्चों के समूहों को बारी-बारी से दिया गया। इसका अच्छा नतीजा निकला। बच्चों ने नक्शे में दी संरचनाओं को नज़दीक से देखकर, अपनी उँगली फेरकर देखा-समझा। इससे उनके लिए समतल कागज़ पर बने नक्शे में अंकित भू संरचनाओं को समझना थोड़ा-सा आसान हो गया। बाकी, नक्शों में दिए जाने वाले नदी, पहाड़, पठार, मैदान को 'देखना' उनके लिए ज़्यादा मुश्किल नहीं रहा।

अब फिर से नक्शे में दिशा-ज्ञान पर लौटते हैं। नक्शों के ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ किनारों पर प्रदर्शित उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम ने बच्चों में यह भ्रम पैदा कर दिया कि ये चारों दिशाएँ सिर्फ नक्शों के किनारों पर ही होती हैं। जो भी दिशा है, नक्शे में वह बस किनारे पर ही है। ऐसे में जो बीच में है, उसकी दिशा तय करना उनके लिए मुश्किल होता था। उनके लिए यह समझ पाना भी कठिन होता था कि दिशा सिर्फ किनारों पर ही नहीं होती बल्कि हर चीज़ के ठीक पास से शुरू होती है। और ऐसे में दिशा एक तरह से सापेक्ष स्थिति होती है। ज़रूरी नहीं कि एक लाइन में खड़े सलीम के लिए जो उत्तर में हो, वह सुदेश के भी उत्तर में हो! दक्षिण भी हो सकता है और एक पंक्ति में बैठे मोहन के पूर्व में क्रम से बैठे सुधा, नर्मदा, बोंदर में से सभी एक-दूसरे के पूर्व में ही बैठे हों, यह ज़रूरी नहीं, वे पश्चिम में भी बैठे हो सकते हैं। बल्कि होते ही हैं। इस मामले में छठीं कक्षा के भूगोल खण्ड में दिया दिशाओं का अभ्यास काफी उपयोगी रहा। इसके ज़रिए यह समझ बना पाया कि नक्शे में हम जिस बिन्दु पर स्थिर होकर उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम होने की बात करते हैं, वह उस बिन्दु की सापेक्ष स्थिति है। ज़रूरी नहीं कि दूसरे बिन्दु से भी वे स्थान उसी दिशा में हों!

असल में, बिना नक्शा दिखाए किसी जगह की दिशा बच्चों को रटा देने से होता यह है कि जब उन्हें उस जगह को नक्शे में ढूँढना होता है, वे आसानी-से यह नहीं कर पाते। मूल बात फिर वही कि प्राथमिक कक्षाओं में नक्शों में जिस तरह दिशाबोध करवाया जाना चाहिए, वह करवाया नहीं जाता। अगर वैसा किया जाता तो बड़ी कक्षाओं में नक्शे देखने-पढ़ने में न सिर्फ आसानी होती बल्कि उसकी समझ और गहरी भी होती

जाती। बहरहाल, छठीं कक्षा का दिशाओं वाला अभ्यास काफी उपयोगी रहा। उसकी मदद से अगले कुछ काम भी आसान हुए।

नक्शे और पैमाने

दिशाओं की ही तरह बच्चों को नक्शे और पैमाने का अन्तर्सम्बन्ध समझाना थोड़ा-सा कठिन था। वे यह बात मुश्किल से समझ पाए थे कि बिना पैमाने का नक्शा मात्र एक चित्र होगा, मानचित्र नहीं! पैमाने की अवधारणा, उसका निर्धारण इत्यादि समझाने के लिए छठीं के भूगोल खण्ड का पाठ 'आओ मानचित्र बनाएँ' काफी रोचक और बच्चों में सक्रियता पैदा करने वाला था। उस पाठ में बच्चों से अपनी कक्षा के कमरे की लम्बाई-चौड़ाई स्केल की मदद से नपवाकर माचिस की तीलियों की मदद से नक्शा बनवाया गया था। यह काफी दिलचस्प गतिविधि थी। मेरी क्लास के बच्चों ने भी अलग-अलग समूहों में क्लास की लम्बाई-चौड़ाई स्केल से नापी और नाप को कॉपियों में नोट कर लिया। दो लड़कों ने नापने और दो ने नोट करने का काम किया। हर समूह पिछले दिन दिए निर्देश के अनुसार माचिस घर से ले ही आया था। अब क्लास का नक्शा बनना था। पाठ में बनाए गए मानचित्र की ही तरह तय किया गया कि माचिस की एक तीली को एक स्केल के बराबर मानकर हर समूह नक्शा बनाएगा। अगर कमरे की लम्बाई 15 फीट है तो 15 तीलियाँ और चौड़ाई 10 फीट है तो 10 तीलियाँ रखी जानी हैं। लेकिन इसमें एक दिक्कत भी थी। कक्षा बड़ी थी। करीब 70 बच्चों की। इनमें बच्चियाँ ही 25 के आसपास थीं। सो, समूह भी तकरीबन 16-17 बने थे। ज़ाहिर है, इतने समूहों के मानचित्र कक्षा के फर्श पर नहीं बन सकते थे। इसके लिए सारे समूहों को स्कूल के मैदान में ले जाना पड़ा। स्कूल का मैदान बड़ा था। लेकिन कभी खेत की ज़मीन रहे होने से उतना समतल नहीं था कि उस पर तीलियों की मदद से नक्शा बनाया जा सके। एक और मुश्किल थी कि हवा तेज़ चल रही थी जिससे तीलियाँ अपनी जगह से हिल जाती थीं। इसके बावजूद जैसे-तैसे और काफी कुछ ठीक-ठाक नक्शे बन गए। हर समूह अपने नक्शे को देखकर खुश था। वह मोटे तौर पर इतना जान गया था कि किसी निश्चित आधार पर बड़ी चीज़ को छोटा करके कैसे बनाया जा सकता है!

कक्षा में लौटकर बच्चों से उनके इस अनुभव पर थोड़ी बात की। अगली और असली चीज़ इसके बाद की जानी थी। उनसे ही पता किया कि अगर एक तीली की जगह एक सेंटीमीटर की लाइन खींचें और नक्शा पेंसिल-स्केल की मदद से कागज़ पर बनाएँ तो! इस 'तो' को सुनकर कई बच्चों के चेहरे पर चमक

अभ्यास के प्रश्न

1. यहां दो चित्र बने हैं। इनमें से एक चित्र का नक्शा भी बना हुआ है। चित्रों और नक्शे का मिलान करके बताओ कि नक्शा चित्र अ का है या चित्र ब का। मिलान करने के लिए चिन्हों की सूची ध्यान से देख लो।

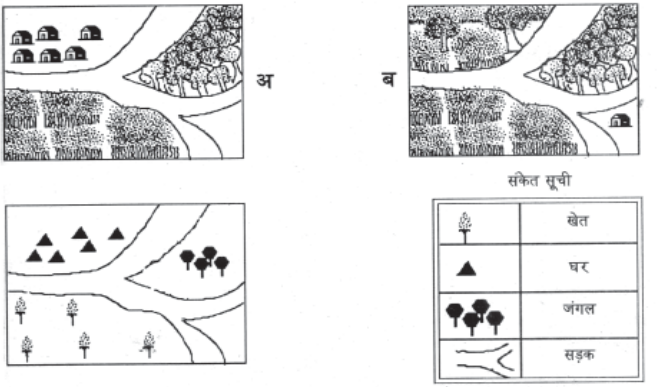

2 क) मोनू ने अपने चौक का नक्शा बनाया। उसका चौक पूर्व से पश्चिम 2 स्केल और उत्तर से दक्षिण 3 स्केल था। मोनू के एक स्केल को माचिस की एक तीली के बराबर मानो। अब बताओ नीचे दिए नक्शों में से कौन-सा नक्शा मोनू के चौक का है?

ख) अगर हम एक स्केल को दो तीली के बराबर मानें तो चौक कितना बड़ा बनेगा? अपनी कापी में बनाओ।

3. इस पुस्तक के पृष्ठ ७७ पर मध्यप्रदेश का नक्शा है। नक्शा देखकर बताओ कि –

- इंदौर भोपाल की किस दिशा में है?
- जबलपुर भोपाल की किस दिशा में है?
- जबलपुर इंदौर की किस दिशा में है?
- हरदा के पूर्व में पड़ने वाले दो शहरों के नाम क्या हैं?

(तुम दिशा तीर की मदद ले सकते हो)

चित्र-3: *कक्षा छठीं के भूगोल खण्ड के पाठ 'आओ बनाएँ मानचित्र' का एक पन्ना।*

जैसी आ गई। और फिर उन्होंने मेरे बताए अनुसार बड़े कागज़ पर अपनी कक्षा के कमरे का मानचित्र बना डाला। अभी उसमें दरवाज़ा, खिड़की, ब्लैक बोर्ड बनाए जाने थे। इनके लिए उपयोग में आने वाले चिह्नों की चर्चा इसी पाठ में थी। उन्हीं चिह्नों का उपयोग कर उन्होंने अपना-अपना कमरा पूरा कर लिया। हालाँकि, इसमें कुछ बच्चों से एक गड़बड़ हो गई। कमरा कायदे से पूर्व-पश्चिम लम्बाई का बनना चाहिए था। जबकि उन्होंने उत्तर-दक्षिण बना दिया। पिछले पाठ में किए दिशाओं के अभ्यास से बाद में उन्होंने अपनी इस गलती से निपटना भी सीख लिया।

बच्चों को पैमाने के आधार पर नक्शा पढ़ना और बनाना आ जाने के बाद, मेरे लिए बच्चों से एक और गतिविधि करवाने की गुंजाइश निकल

आई। पहले मैंने उनसे अपनी किताब में दिए सारे नक्शों में दिए पैमानों को पढ़ने को कहा। उनकी पुस्तक में भारत के अधिकांश नक्शे 1 सेंटीमीटर बराबर 200 किलोमीटर के पैमाने के आधार पर बने थे। मतलब नक्शे पर की 1 सेंटीमीटर की दूरी ज़मीन पर की वास्तविक 200 किलोमीटर की दूरी होगी – यह उन्हें स्पष्ट कर दिया गया। इसके बाद उन्हें नक्शे में दिए अलग-अलग स्थानों के बीच की वास्तविक दूरी पैमाने के आधार पर पता करने को कहा। हालाँकि, सड़क या रेल मार्ग से ये दूरियाँ वास्तविक दूरी से अलग हो सकती थीं। बल्कि थी हीं। इसके बावजूद यह एक अच्छी गतिविधि थी। बच्चों ने इसमें काफी रुचि ली। बल्कि उन्हें मज़ा भी आया। किताब के नक्शों के अलावा उन्होंने एटलस के नक्शों में दिए पैमानों को भी पढ़ने की कोशिश की। अगली कक्षाओं में उन्होंने किताबों में दिए नक्शों को पैमानों के अनुसार पढ़ने का प्रयास किया और अपने इस प्रयास में कई हद तक सफल भी रहे।

पैमाने पढ़ने की दक्षता बढ़ाने के लिए मैंने बार-बार पैमाने सम्बन्धी गतिविधि तो करवाई ही, इसके अलावा मासिक टेस्ट, तिमाही, छमाही और वार्षिक परीक्षाओं में पैमाने सम्बन्धी प्रश्न कई तरह से पूछे – जितनी ज़्यादा तरह से पूछे जा सकते थे, उतनी तरह से। इसके अतिरिक्त अलग-अलग नाप और पैमाने देकर उनसे अलग-अलग तरह के कमरों के मानचित्र बनवाए। दो दरवाज़े वाले, आमने-सामने दरवाज़े वाले, उत्तर-दक्षिण लम्बाई वाले, पूर्व-पश्चिम लम्बाई वाले! चिह्न या संकेतों सहित! इस सबका लाभ भी हुआ। बच्चे न सिर्फ मानचित्र पढ़ना बल्कि बनाना भी काफी-कुछ सीख गए। ज़ाहिर है, यह उनकी एक खास तरह की उपलब्धि तो थी ही, साथ ही उनकी बुनियादी दक्षता का विस्तार भी था। आखिर, शिक्षा का एक उद्देश्य बच्चे में अलग-अलग तरह की दक्षता पैदा करना और उनका विस्तार करना भी है।

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश*, संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं*, और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: *एकलव्य* द्वारा विकसित व म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा प्रकाशित सामाजिक अध्ययन पाठ्यपुस्तक, कक्षा 6 व 7 से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।